कला, संस्कृति और परम्परा के स्तोत्रकार कवि कालिदास

Kalidas : The devout narrator of Art, Culture and Tradition

योगेश शर्मा[1], आकृति ठाकुर[2]

Yogesh Sharma[1], Aakriti Thakur[2]

[1] Associate Professor- Kalakosa Division, Indira Gandhi National Centre for the Arts, New Delhi

[2] Research Scholar- Department of Sanskrit, Philosophy and Vedic Studies, Banasthali Vidyapith, Tonk, Rajasthan

ycsharma2000@yahoo.co.in aakritithakur2@gmail.com

https://doie.org/10.0729/VP.2024467093

शोध सारांश

भारतीय चिन्तन में ज्ञान की नित्यता एवं अक्षुण्णता का विमर्श हुआ है। ज्ञान की इसी परम्परा के अन्तर्गत सभी लौकिक एवं अलौकिक विषयों का समन्वयन किया गया है। स्वरूपगत विविधता के अनन्तर भी भारतीय ज्ञाननिधि के सभी पक्ष अद्वय दृष्टि के ही परिचायक हैं। यही एकात्मवादी दृष्टि भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परम्परा के उद्घोष रूप में परिलक्षित होती है। वैदिक ऋषि-मनीषियों से लेकर आदिकवि वाल्मीकि, महर्षि वेद व्यास से लेकर शंकराचार्य एवं आचार्य अभिनवगुप्त सहित सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में इसी अद्वयवादी विचारधारा का पल्लवन देखा गया है। महाकवि कालिदास भी इसी ज्ञानात्मक परम्परा के आराधक हैं, जिन्होंने अपने ग्रन्थों में जीवन के समस्त विषयों को समाविष्ट कर लिया है। कालिदास की सात प्रमुख काव्यकृतियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें रघुवंश और कुमारसम्भव (महाकाव्य), मेघदूत और ऋतुसंहार (खण्डकाव्य अथवा गीतिकाव्य) तथा अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र (रूपक) आदि हैं। कवि द्वारा अपनी पूर्ववर्ती आचार्य परम्परा को नमन करते हुए प्राचीन परम्परा के साथ-साथ अपने ग्रन्थों में आधुनिकता को भी पर्याप्त अवकाश दिया गया है, जो इनमें नूतन और पुरातन के अद्भुत संगम का बोध कराता है। मनुष्य जीवन के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, आध्यात्मिक इत्यादि सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं का सुन्दर समन्वयन हमें कालिदास में देखने को मिलता है। शिव और शक्ति की स्तुति एवं यथास्थान व्याख्या के द्वारा कवि ने अन्तर्जगत् और वस्तु-जगत् के सन्तुलन एवं साहचर्य का भी प्रकाशन किया है। कालिदास का साहित्य विभिन्न विषयों के माध्यम से शास्त्र और प्रयोग का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। वस्तुतः कालिदास के ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के सभी पक्ष उसी प्रकार अन्तर्निहित हैं, जिसप्रकार परासंवित् (परमात्मा) में यह जगत् समाविष्ट होता है। प्रस्तुत शोधपत्र ऐसे उन कवि कालिदास से सम्बद्ध कतिपय विषयों पर विमर्श करने की चेष्टा करता है। साथ ही, कवि की भारतीय ज्ञान परम्परा एवं संस्कृति के प्रति अप्रतिम श्रद्धा का भी संकेत करता है।

Throughout the history of Indian intellectual thought, there have been extensive discussions on the continuity and coherence of knowledge. This tradition places importance on integrating both worldly (Laukika) and otherworldly (Alaukika) elements with each other. Despite the different forms (Svaroop) they may take, all facets of this rich tradition has non-dualism (Advaita), as its underlying thread. This holistic approach is evident in the multifaceted representations of Indian culture and knowledge tradition. From the ancient Vedic sages and scholars to revered figures like Valmiki, Veda Vyas, Adi Shankaracharya, and Acharya Abhinavagupta, the growth of this non-dualistic (Advaitavadi) philosophy has been explored in the vast corpus of Indian literary heritage. Kalidas, a prominent figure in this tradition, has expounded numerous aspects related to

humankind in his literary works. His seven major poetic works (Kavyas), including the two Mahakavyas, viz., the Raghuvamsha, and the Kumarasambhava, two Khanda or Geeti-Kavyas, viz., the Meghduta, and the Ritusamhara, and three dramas (Rupakas), namely, the Abhigyanshakuntala, the Vikramorvashiya, and the Malavikagnimitra, ably exemplify his lucid contribution. While respecting the teachings of his predecessors (Acharyas), Kalidas embraces innovation and modernity, and blends the ancient (Puratan) with the contemporary (Nutan), seamlessly. His works encompass diverse aspects of life such as culture, history, geography, society, politics, education, religion, and spirituality. While worshipping Shiva and Shakti in his benedictions (mangalacharanas and nandi pathas), the poet strives to strike a balance between the spiritual and the mundane, and thus presents a model poetic code to his successors. His literature serves as a testament to the harmonious coexistence of the tenets of theory (Shastra) and their practical application (Prayoga). Essentially, the works of Mahakavi Kalidas encapsulate the essence of Indian culture, in the same way as this world is embodied in the Absolute (Parasamvit). This research paper aims to delve into the ingenuity of Kalidas as a poet and highlights his profound dedication to Indian knowledge tradition and culture.

भारत में ज्ञान की नित्यता का सिद्धान्त सम्पूर्ण चिन्तन संस्कृति, वाङ्मय एवं दर्शन का प्रमुख आधार रहा है। यहाँ ज्ञान की सर्जना न होकर उसका साक्षात्कार किया जाता है या परम्परा से नित्य श्रवण किया जाता है। यही कारण है कि ज्ञान दृष्ट और श्रुत है। सम्भवत: यही अभेदात्मक दृष्टि लगभग सभी दर्शनों के एक समान लक्ष्यबिन्दु का संकेत करती है। परमतत्त्व का स्वरूप जिस भी रूप में निर्धारित किया जाता है वह ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान के समावेश का प्रकाशन करता है। यही अद्वैत/अद्वय का प्रमुख आधार है। अद्वैत/अद्वय दृष्टि भारतीय दर्शन के मूल स्वभाव को व्यक्त करती है। यही उपनिषद् की मूल दृष्टि है, जो बाद में वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत शाङ्कर अद्वैत आदि के रूप में परिलक्षित होती है। यही प्रत्यय सर्जनात्मक साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होता है। वाल्मीकि से अब तक सभी में यही एकात्मवादी दृष्टि देखने को मिलती है।

कालिदास ज्ञान की इसी नित्य परम्परा के कवि हैं। जहाँ उनके चिन्तन में शिव-शक्ति के सामरस्य एवं परम शिव के सर्वशक्तित्व का स्वरूप प्रतीत होता है। कालिदास ज्ञान की नित्यता के आराधक कवि हैं। उनमें गुरु-शिष्य, ईश्वर-भक्त, एवं कविता की नित्य परम्परा के प्रति एक श्रद्धा का भाव है। रघुवंश के प्रथम सर्ग में रामकथा के विषय में वे कहते हैं-

अथवा कृतवाग्द्वारेऽपि वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभि: ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति:।।

(रघुवंशम्, 1/4)

इस श्लोक के माध्यम से कालिदास रामकथा के पूर्व कवि एवं ऋषि-परम्परा की आराधना करते हैं, और स्वयं के कार्य को सूत्र-गति के सदृश कहकर ज्ञान की नित्यता, परम्परा और संस्कृति के संवाहक प्रतिनिधि का भाव प्रदर्शित करते हैं।

कालिदास में परम्परा के प्रति गहरी आस्था है, साथ ही प्राचीन एवं नूतन का भी एक अप्रतिम समन्वय परिलक्षित होता है। यह चेतना के चिरन्तन स्पन्दन का परिचायक है। मालविकाग्निमित्रम् के आरम्भ में जहाँ कालिदास अपने पूर्ववर्ती कवियों भास, सौमिल्ल एवं कविपुत्र के प्रति पूर्ण आदर देते हैं, वहीं वर्तमान के महत्त्व का भी प्रतिपादन करते हैं।

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे: कालिदासस्य क्रियाया: कथं बहुमान:"।
पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्त: परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ: परप्रत्ययनेयबुद्धि: ।।
(मालविकाग्निमित्रम्, 1/3)

यह कालिदास की इतिहास दृष्टि का भी आख्यान है, जिसमें चिन्तन का सातत्य एवं प्रामाणिकता है। जो अतीत और वर्तमान का संवाद है, जिसमें कोकिलों के पञ्चम स्वर के आकर्षक मधुर गीतों से गुंजायमान सरस सान्द्र मंजरियों से लदे हुए सहकार के सुखद छायादार वृक्षों के आस-पास शीतल जल में अठखेलियाँ करता सा छप-छप शैशव रूप भविष्य एक गौरवशाली इतिहास बनने को सन्नद्ध हो रहा

है। कालिदास में अतीत - वर्तमान - और भविष्य एक साथ अपने-अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए अपनी-अपनी भूमिका में प्रतिबिम्बित हैं। कालिदास में अतीत, अद्य और अनागत परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होकर काल एवं चेतना की अखण्डता और ज्ञान के अनवरत प्रवाह से युक्त नदी के समान पारदर्शी निनाद करते हुए स्वच्छ जल के सदृश सहृदयों को हृदय में स्थित तरंगों को तरंगित कर प्रकाश (चेतना) और विमर्श (बोध) की नित्य प्रक्रिया के लिए प्रेरित करते हैं।

रघुवंश महाकाव्य में वाणी (शब्द) और अर्थ के नित्य साहचर्य को पार्वती और परमेश्वर के संपृक्त (सामरस्य) भाव के साथ उपमित करके अनेक स्थलों पर भारतीय परम्परा और संस्कृति की अनुगामी विशेषता को कालिदास आनन्द के साथ व्यक्त करते हैं। अकर्तृत्व का भाव मूल भारतीय विचार है। हम जो कुछ भी करते हैं, उसके करने में, हमसे कहीं अधिक परम्परा, संस्कृति और ज्ञान सम्बद्ध चिरन्तर चेतना के नित्य प्रवाह की भूमिका होती है, जो पूर्ववर्ती ऋषियों, कवियों, मनीषियों, द्रष्टाओं के साक्षात्कृत अनुभव से साक्षात् या उनकी कृतियों से हम तक पहुँचता है - यह नित्य चिरन्तन - नूतन - विचार है। ऋग्वेद के अग्निसूक्त में कहा गया है -

"अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यैर्नूतनैरुत"

(ऋग्वेद, 1/1/2)

कालिदास इसी परम्परा की वन्दना विनम्रतापूर्वक अपने सभी ग्रन्थों में करते हैं। सम्भवतः कालिदास की दृष्टि में कविता सहज और स्वतः स्फूर्त नित्य प्रेरणा है, जिसकी सर्जना नहीं होती वह स्वयं हो जाती है। यदि कवि, गुरु एवं नित्य ज्ञान की परम्परा के प्रति श्रद्धा का भाव हो, वह भी विगलित अहङ्कार होकर। कालिदास कहते हैं -

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।

(रघुवंशम्, 1/9)

अर्थात् मैं (कालिदास) रघुवंशी राजाओं के वंश की कहानी कहूँगा, जबकि मेरी वाणी में अत्यल्प सामर्थ्य है। उनके (राजाओं) गुणों ने मेरे कानों में आकर मेरी बुद्धि को प्रेरित कर दिया है।

कालिदास सहज प्रतिभा और प्राकृतिक भावों के मूर्त्त कवि हैं। उनकी कविता में वेद का मन्त्र 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' चरितार्थ होता है। वेद में यह मन्त्र परमात्मा के स्वरूप को व्यक्त करता है। परमात्मा कवि है, मनीषी है और अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् दोनों में व्याप्त है। दोनों जगत् भी उसी से हैं। कविता में कविरूप कालिदास भी ऐसे ही दिखते हैं, और परमात्मा के इसी स्वरूप को अपनी कविता में भी प्रकाशित करते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के नान्दी पाठ में वे शिव के आठ रूपों की वन्दना करते हैं, जिससे हमें एक उत्तर अवश्य मिलता है कि परमात्मा कहाँ है और इसका स्वरूप कैसा है -

कालिदास कहते हैं कि वह जल के रूप में प्रथम सृष्टि है, वह यज्ञ में अग्नि के रूप में विद्यमान है, यज्ञकर्ता होता के रूप में होत्री रूप है। दिन और रात को निर्धारित करने वाले सूर्य और चन्द्र के रूप में वह दृष्टिगत है। श्रुतिविषयगुण (शब्द) रूप आकाश वही तो है। हम जिससे प्राणवान् है, ऐसा वह वायुरूप है, और सभी का बीजरूप प्रकृति (पृथिवी) वह परमात्मा है।

कालिदास में वस्तु जगत् और अन्तर्जगत् दोनों का सन्तुलन दिखता है परमात्मा के इसी रूप की वे भक्ति भी करते हैं। "वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं" - विक्रमोर्वशीयम् के नान्दी पाठ में वे परमतत्त्व को भक्तियोग-सुलभ कहते हैं। वहीं मालविकाग्निमित्रम् में "यः परस्ताद्यतीनाम्" कहकर शिव-शक्ति के सामरस्य की अभिव्यक्ति करते हैं। वे जगत् की सत्ता को भी स्वीकार करते से परिलक्षित होते हैं - सम्पूर्ण जगत् के सभी आधारभूत तत्त्व (जल-आदि) परमतत्त्व के ही मूर्त्तरूप हैं, ऐसा वे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कह चुके हैं। इस प्रकार प्रतीत होता है कि संसार के प्रति कालिदास की सकारात्मक दृष्टि है।

कालिदास की भारत के भूगोल, संस्कृति, जीवन-मूल्य एवं समरसतापूर्ण समाज के प्रति गहरी निष्ठा है- कुमारसंभवम् के प्रथम श्लोक में प्रतीत होता है कि, मानो उन्होंने भारत का सीमाङ्कन ही कर दिया हो। वे कहते हैं कि *अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।*
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

(कुमारसंभवम्, 1/1)

अर्थात् उत्तर दिशा में पृथिवी के मानदण्ड के रूप में स्थित हिमालय नाम का देवस्वरूप एक पर्वत है। इसके पूर्व और पश्चिम में समुद्र है। मेघदूतम् में कालिदास ने यक्ष की कहानी के माध्यम से मेघ को संदेशवाहक बनाकर भारत से उत्तर भारत तक के मानसून के मार्ग को अत्यन्त सूक्ष्मता और स्पष्टता के साथ चित्रित किया है। आधुनिक भूगोल एवं मौसम के विद्वानों के द्वारा भी वर्तमान में प्रदर्शित मानसून का क्रम लगभग वैसा ही है जैसा कालिदास ने मेघदूत में उल्लेख किया है। रामगिरि आश्रम (नागपुर), आम्रकूट पर्वत (अमरकंटक पर्वत, अनूपपुर), रेवा (नर्मदा) नदी, दशार्ण (विदिशा), अवन्तिप्रदेश, उज्जयिनी, शिप्रा नदी, गम्भीरा नदी, देवगिरि पर्वत, चर्मण्वती (चम्बेल) नदी, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, कनखल गङ्गा का उद्गम क्षेत्र, हिमालय, कैलाश पर्वत एवं अलकापुरी का क्रमश: वर्णन संकेत करता है कि कालिदास को भारत के भूगोल एवं मानसून का विशेष ज्ञान था। कालिदास प्रकृति के उत्कृष्ट चित्रकार हैं। प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य का अद्भुत निदर्शन उनके सभी ग्रन्थों में देखा जा सकता है। ऋतुसंहारम् में ऋतुओं का संजीव एवं साक्षात् वर्णन है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में प्रकृति का मानवीय संवेदनाओं के रूप में स्पष्ट प्रकाशन दिखता है। नाटक के आरम्भ में ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में मानव-उल्लास एवं सुखानुभूति के सभी कारकों का उल्लेख कालिदास करते हैं -

सुभगसलिलावगाहा: पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाता ।
प्रच्छाय सुलभनिद्रा दिवसा: परिणामरमणीया:॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/3)

ग्रीष्म ऋतु में शीतल जल में स्नान करने में अत्यन्त आनन्द आता है, पाटल की सुगन्ध में बसा हुआ पवन बड़ा अच्छा लगता है। घने छायादार वृक्षों के नीचे नींद अच्छी आती है। सन्ध्या का समय भी सुहावना होता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क में कालिदास के द्वारा प्रकृति और मनुष्य में एक ऐसा अभेद स्थापित किया गया है, कि प्रकृति की सभी घटनाएँ एवं मानवीय क्रियाओं में किसी भी प्रकार का कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। कण्व और शकुन्तला के माध्यम से कालिदास की प्रकृति के प्रति भावनात्मक अनुभूति एवं संवेदना इन शब्दों में देखी जा सकती है -

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपीतेषु या
नादत्ते न प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व: कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव:
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/10)

इस श्लोक में कण्व शकुन्तला के पक्ष से तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि - जो तुम्हें (वृक्षों को) पिलाये बिना पानी नहीं पीती थी। आभूषण के प्रति आकर्षण होने पर भी स्नेहवश तुम्हारे (वृक्षों के) पत्ते नहीं तोड़ती थी। तुम्हारे (वृक्षों के) नई-नई कोपलें आने वाला समय जिसके लिए (शकुन्तला के लिए) उत्सवकाल होता था। आज वही शकुन्तला अपने पति के घर जा रही है। तुम सभी इसे अनुज्ञा दो। महर्षि कण्व का वृक्षों के साथ ऐसा संवाद प्रकृति के आत्मदर्शन एवं मनुष्य की प्रकृति के साथ हृदय-संवाद की मनोरम अभिव्यक्ति है। कालिदास आध्यात्म एवं लोक के सुन्दर समन्वय में प्रकृति की भूमिका को अत्यन्त महत्त्व देते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कहानी में अध्यात्म एवं लोक के समन्वय में प्रकृति की भूमिका आद्योपान्त परिलक्षित होती है। तपोवन में रहने वाले ऋषि, मुनि एवं आरण्यकों के लिए राजा दुष्यन्त के मन में गहरी श्रद्धा के भाव हैं, जो स्थान-स्थान पर व्यक्त होते हैं। जैसे, जब विदूषक राजा दुष्यन्त को आश्रमवासियों से कर-संग्रह करने के लिए कहता है, तब राजा उत्तर देते हैं -

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम् ।
तप: षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि न: ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2/13)

अर्थात् चार वर्णों से जो राजाओं को कर मिलता है, उसका फल तो शीघ्र नष्ट हो जाता है। किन्तु ये आरण्यक हमें तप का षष्ठांश देते हैं। वह सदैव अक्षय रहता है।

उपर्युक्त श्लोक तपोवन एवं तप की संस्कृति के महत्त्व को प्रदर्शित करता है। साथ ही तप के अक्षय षष्ठांश (कर) के माध्यम से राष्ट्र निर्माण में आरण्यकों की भूमिका का संकेत करता है। कालिदास राजा के उत्तरदायित्व एवं प्रजा के प्रति कर्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख अपने ग्रन्थ में करते हैं। राज्य एवं राज्य के राजस्व के सन्दर्भ में कालिदास कहते हैं कि - "प्रजा के कल्याण के लिए ही राजा को प्रजा से ठीक वैसे ही कर लेना चाहिए, जैसे कि सूर्य जितने जल

का अवशोषण करते हैं उसका सहस्र गुणा वर्षा के रूप में पृथ्वी को लौटाते हैं"।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुच्छ्रष्टुं आदत्ते हि रसं रविः॥
(रघुवंशम्, 1/18)

इसके अतिरिक्त राजा के प्रजा के प्रति उत्तरदायित्वों में प्रजा का शिक्षण, पोषण एवं रक्षण प्रमुख हैं। इस आधार पर कालिदास राजा और प्रजा के मध्य सम्बन्ध को पिता और पुत्र के रूप में स्थापित करते हैं। कालिदास की दृष्टि में लोकतन्त्र के कार्यों में राजा को निरन्तर दायित्व का निर्वाह करते रहना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य एकबार ही अपने घोड़े जोतकर निरन्तर चल रहा है, पवन रात-दिन बहता रहता है और शेषनाग पृथ्वी के भार को अपने ऊपर सदा धारण किये रहते हैं। षष्ठांशवृत्ति वाले राजा की भी यही स्थिति है।

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः॥
(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/4)

कालिदास की शिक्षित एवं स्वस्थ समाज के प्रति गहरी आस्था है। उनके ग्रन्थों में समाज के सभी वर्गों के लोग एक भाव और समान अधिकार से विमर्श करने के अधिकारी हैं। कालिदास की दृष्टि में राजा और आरण्यक अथवा अन्य किसी भी व्यक्ति में कोई भेद नहीं हैं। वशिष्ठ ऋषि के गुरुकुल में राजा दिलीप भी वैसे ही रहते हैं, जैसे अन्य तपोवनवासी। यही स्थिति अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी परिलक्षित होती है। तपोवन में हिरण का पीछा करते हुए राजा को दो ब्रह्मचारी रोक देते हैं, और हिंसा का विरोध करते हैं। राजा दुष्यन्त भी उनकी बात को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में उल्लिखित महर्षि कण्व एक गुरुकुल के कुलपति हैं, जिनके आश्रम में अनुसूया, प्रियंवदा एवं शकुन्तला को भी शिक्षा दी जा रही है। साथ ही अन्य ब्रह्मचारी भी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। उपर्युक्त प्रसंग इस बात की ओर संकेत करते हैं, कि उस काल में महिलाओं को भी शिक्षा का उतना ही अधिकार था, जितना पुरुषों को।

कालिदास शिक्षा के अनेक ऐसे मानदण्डों का निर्धारण करते हैं जिनसे शिक्षक एवं शिक्षा-व्यवस्था के स्वरूप को एक दिशा मिल सकती है। शिक्षकों के विषय में वे कहते हैं कि –

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥
(मालविकाग्निमित्रम्, 1/16)

अर्थात् कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपने गुणों को भलीभाँति जानते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उन गुणों को दूसरों को सिखाने में निपुण होते हैं। वस्तुतः शिक्षकों में वही श्रेष्ठ है जिसमें ये दोनों बातें हों।

शिक्षक का यह भी धर्म है कि वह शास्त्रार्थ करने से न भागे, दूसरों (विद्वानों) की निन्दा को सहन न करे। जो विद्वान् (भले ही विरोधी क्यों न हो) है, उसका सम्मान करे। केवल आजीविका के लिए शिक्षण न करे। उपर्युक्त इसी प्रसंग में मालविकाग्निमित्रम् में स्पष्टता से कहा गया है कि-

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥
(मालविकाग्निमित्रम् 1/17)

अर्थात् जो लोग शिक्षक का पद प्राप्त कर लेने पर विमर्श से डरकर भागते हैं। अन्य विद्वान् लोगों की निन्दा को सहन कर लेते हैं। केवल जीविका के लिए ही शिक्षण करते हैं। ऐसे लोगों को ज्ञान का विक्रय करने वाला वणिक माना जाता है।

शिक्षा के अन्तर्गत कालिदास शास्त्र एवं प्रयोग के सिद्धान्त का समर्थन करने से परिलक्षित होते हैं। शास्त्र विद्या के अन्तर्गत समस्त चौदह विद्याओं का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। रघुवंशम् के प्रथम सर्ग में रघुवंशी राजाओं एवं दिलीप के सन्दर्भ में वे कहते हैं कि-

''शैशवेऽभ्यस्त विद्यानाम्'' (रघुवंशम्, 1/8)

''विद्यानां पारदृश्वनः'' (रघुवंशम्, 1/23)

जिनकी व्याख्या में 13वीं शताब्दी के 'रघुवंश' पर संजीवनी के टीकाकार मल्लिनाथ कहते हैं कि विद्या का तात्पर्य ''वेद वेदाङ्ग'' आदि से है। अतः कालिदास वेद, वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा, तर्कशास्त्र, नाट्य, नृत्य, संगीत, चित्र, शिल्प आदि शास्त्र एवं प्रयोग के एक समान पक्षधर हैं। एक ओर वे वेदत्रयी एवं अध्यात्म विद्या की बात करते दिखते हैं तो, दूसरी ओर प्रयोग प्रधान नाट्यशास्त्र

की। प्रयोग भी ऐसा कि सभी को आनन्द दे। कालिदास कहते हैं कि -

आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/2)

अर्थात् जब तक विद्वान् लोग अच्छा न कहें, तब तक नाटक को सफल नहीं माना जा सकता है। प्रयोग विज्ञान रूप नाट्य के प्रति कहीं-कहीं तो कालिदास अधिक पक्ष लेते दिखते हैं। वे नाट्य को शान्तचाक्षुष यज्ञ की संज्ञा देते हैं। ऐसा चाक्षुष यज्ञ, जिसमें महादेव शंकर दो भागों में विभक्त होकर ताण्डव और लास्य के रूप में दिखते हैं। इस नाट्य में सत्त्व, रज और तम तीनों गुण दिखते हैं। अनेक रसों से सम्पन्न विभिन्न प्रकार के लोकचरित परिलक्षित होते हैं। भिन्न-भिन्न रुचि के सभी लोगों का समाराधन इस नाट्य में हो जाता है। कालिदास सम्भवत: नाट्य को ईश्वर विनिर्मित विश्वरूप के प्रतिबिम्ब के रूप में देख रहे हैं। क्योंकि जब वे विश्वरूप नाट्य का वर्णन करते हैं, तो उसमें महादेव शंकर की क्रियाओं का उल्लेख करते हैं। वहीं दूसरी ओर जब ईश्वर स्वरूप महादेव का वर्णन करते हैं तब उन्हें जगत् में व्याप्त अष्टमूर्त्ति तत्त्वों (जल, अग्नि, होत्री, सूर्य, चन्द्र, आकाश, वायु, पृथिवी) से अभिव्यक्त करते हैं। अत: कालिदास कला और कलाकार को समष्टि एवं व्यष्टि दोनों स्तरों पर देखते हुए अभिव्यक्ति और अनुभूति के समान भाव को व्यक्त करते हैं।

कालिदास के तीन नाट्यों में यदि शिव के स्वरूप को क्रमश: मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् के आधार पर समझने का प्रयास करें, तो प्रतीत होता है कि, सर्वव्यापक भगवान् शिव धीरे-धीरे इस जगत् के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हो रहे हैं। जैसे-जैसे हमारी बुद्धि का नैर्मल्य बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हम आत्मस्थित होते जाते हैं, परिणामस्वरूप जगत् में व्याप्त अष्टमूर्त्ति रूप (जल, अग्नि, होत्री, सूर्य, चन्द्र, आकाश, वायु, पृथिवी) शिव के स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान करते हैं।

मालविकाग्निमित्रम् में कालिदास भगवान् शिव से उन्हें एकमात्र ईश्वर, आठ रूपों में संसार का पोषण करने वाला बताकर मनुष्य की पापोन्मुखी बुद्धि को नष्ट करने की प्रार्थना करते हैं। वहीं विक्रमोर्वशीयम् में वे भगवान् शिव को हृदयस्थ बताते हुए कहते हैं कि ''वेदान्तों में जिन्हें एक ऐसा पुरुष कहा गया है, जो आकाश तथा पृथिवी में व्याप्त हैं, जिनका ईश्वर नाम सार्थक है और इस ईश्वर का नाम से अन्य कोई नहीं पुकारा जा सकता, मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक पुरुष जिन्हें प्राणादि के द्वारा अपने हृदय के भीतर खोजा करते हैं, वे ईश्वर रूप भगवान् शिव ''भक्तियोग सुलभ'' हैं। और अन्त में, अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कालिदास शिव को क्रमश: जल, अग्नि, होत्री, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथिवी एवं वायु आदि के आठ रूपों में प्रत्यक्ष एवं मूर्त्ति स्वरूप मानते हैं। उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि कालिदास परम तत्त्व के अनुसंधान एवं अनुभव की प्रक्रिया का व्यवस्थित रूप में निरूपण कर रहे हैं।

कालिदास एक सम्पूर्ण कवि हैं, जो एक ओर रघुवंशम्, कुमासम्भवम् एवं मेघदूतम् जैसे श्रव्यकाव्यों की सर्जना करते हैं, तो दूसरी ओर उसी सामर्थ्य से अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् एवं मालविकाग्निमित्रम् जैसे नाट्यरूप दृश्यकाव्यों की सर्जना करते हैं। जिनके ग्रन्थों में सम्पूर्ण लोक एवं लोककर्त्ता परमतत्त्व समष्टि और व्यष्टि दोनों रूपों में प्रतिबिम्बित हैं। जो अनेक संस्कृतियों के समन्वयक कहे जा सकते हैं। जिनके ग्रन्थों में भारत-बोध का दर्शन होता है। जिनके आराधक महाकवि वाणभट्ट, उद्भट, जयन्त भट्ट, अभिनवगुप्तपादाचार्य, श्रीकृष्ण कवि, जर्मन विद्वान् गेटे आदि अनेक उन्हीं के अनुगामी विद्वान् हैं। ऐसे उन कालिदास के विषय में किंचित् संकेत भर प्रस्तुत लेख में किया गया है। अभी अनगिनत पक्ष हैं। जिन पर अनवरत चर्चा की आवश्यकता है। सम्भवत: अग्रिम किसी अंक में फिर से कालिदास के अन्य पक्षों की चर्चा करेंगे। कालिदास के ही शब्दों में –

क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

(रघुवंशम्, 1/2)

कहाँ तो सूर्यवंश रूपी प्रभावशाली एवं विशाल कालिदास का साहित्य और कहाँ छोटी सी बुद्धि वाला मैं। मैं यह भलीभाँति जानता हूँ, मैं एक छोटी सी नाव से अपार समुद्र को मूर्खतावश पार करने की इच्छा कर रहा हूँ।